भारत में प्राथमिक न्याय एवं त्वरित जवाबदेही हेतु प्राइवेट अदालतों की स्थापना

(Study to establish private court in India for quick response and primary justice)

A

SYNOPSIS

SUBMITED TO THE

JAYOTI VIDYAPEETH WOMEN'S UNIVERSITY, JAIPUR

DEPARTMENT OF LAW AND GOVERNENCE

FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY

IN

LAW

शोध निर्देशिका

जे. वी. एन. डॉ बीना दीवान

शोधार्थी

जे. वी. एन. गिरजेश चतुर्वेदी

JVR-III/20/4052

कानून और शासन विभाग

ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय जयपुर

राजस्थान-2021

प्रस्तावना

प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था और उसके बुनियादी सिद्धांतों को शुक्र नीति में बहुत स्पष्ट शब्दों में रेखांकित किया गया है। शुक्र नीति के अनुसार राजा को भी न्यायपालिका में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं थी। राजा स्वयं भी जब सर्वोच्च सत्ता की दृष्टि से न्यायिक कार्य करता था तो उसे स्वच्छ कपड़े पहन कर शांत भाव से विचार एवं विवेक के साथ न्यायिक दृष्टिकोण से मामले का निष्पादन करना पड़ता था। सामान्य तौर पर पत्रावलियों को क्रमबद्ध लेकर उन पर निर्णय करना आवश्यक था। किसी पत्रावली को क्रम में पहले निष्पादित करने की अनुमति तब ही थी जब ऐसा करना अति आवश्यक हो। (क्रम गता दि वादा स्तु पश्येद्वा कार्य गौर वात) (शुक्र 5157)। न्यायिक अधिकारी के लिए यह आवश्यक था कि वह एकांत में पक्षकारों को न सुने। निजी वार्ता किसी भी प्रकरण में निषिद्ध थी और संबंधियों के झगड़े यदि आये तो उनको स्वयं न सुनकर राजा के समक्ष रख देते थे। पक्षकारों के वाद जनता के समक्ष सुने जाकर निर्णित करना पड़ता था और यथासंभव एक अकेले न्यायधीश के बजाय एक ही प्रकरण को एक से अधिक न्यायाधीश सुनते थे। (नैकः पशेच्च कार्याणा वादिनों श्रणद्याद्वश रहसि च नृपः प्राज्ञः साम्याशैव कदाचन) (शुक्र 5, 6)। किसी भी वाद अथवा शिकायत को सुनने से पूर्व उस संदर्भ में वाद पत्र अथवा आवेदन प्रस्तुत होना अनिवार्य था। कोई न्यायाधीश निर्णय देने से अथवा प्रकरण के निष्पादन में विलंब करता था तो उसे तिरस्कृत भावना से देखा जाता था। यह आवश्यक था कि न्यायाधिपति निष्पक्ष हो। न्यायपालिका में भ्रष्टाचार सबसे ज्यादा निंदनीय था और यदि किसी राजा को यह आभास हो जाता था कि अमुक न्यायिक अधिकारी ने घूंस ली है तो उसे राज्य से निष्कासित कर दिया जाता था और उसकी समस्त संपत्ति को अधिग्रहित कर लिया जाता था।

उपरोक्त सिद्धांत सर्वमान्य थे। उनका उल्लंघन नहीं होता था। यदि कभी कोई विकृति आई तो राजा स्वयं उसे ठीक करता था और राजा ही यदि कभी निरंकुश हो गया तो प्रजा विद्रोह कर उठी थी और येन केन प्रकारेण उसे पदच्युत करने का प्रयास होता था।

अतः यह स्पष्ट है कि हमारी न्याय प्रणाली अनूठी थी और समाज में व्यक्ति को स्वच्छ, सस्ता, एवं समय पर सीधा न्याय प्राप्त होता था।

केवल भारत के ही नहीं समूचे विश्व के न्यायविदों ने इस बात को स्वीकार किया है।

एक ब्रिटिश लेखक जॉन डब्लू स्पेलमेन ने अपनी पुस्तक पोलिटिकल थ्योरी ऑफ एन्सियंट इंडिया में लिखा है कुछ दृष्टि से प्राचीन भारत में प्रचलित न्याय व्यवस्था हमारी व्यवस्था से काफी ज्यादा विकसित थी अर्थात कुछ हद तक प्राचीन भारत की न्याय प्रणाली हमारी वर्तमान न्याय प्रणाली से आगे थी। सच को जानने की उत्कंठा थी और न्याय करने की इच्छा शक्ति। गवाहों को स्वयं न्यायधीश की शपथ दिलाता था और आज जैसे नैतिक अधोपतन नहीं हुआ था कि न्यायालय में शपथ लेकर अधिकतर लोग झूठ का सहारा लेते हैं। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधिपति हरिश्चंद्र पति त्रिपाठी ने स्मृतियों में जो कानूनी प्रक्रिया बताई है उनके ऊपर गहन अध्ययन किया है एवं सभी का निचोड़ यह निकला है कि सत्य को सर्वोपरि स्थान दिया गया था। अतः जहां शिक्षा दी जाती थी

यानी गुरुकुलों में यही सिखलाया जाता था सत्यात्र प्रम दितव्यम न्याय पद से कभी विमुख न हो। अतः न्यायिक अधिकारी के समक्ष भी दो सिद्धांत थे जो उसे देखने होते थे। एक था सत्यात्रास्ति परोधर्मः सत्य का पालन ही सर्वोच्च आचार संहिता है।

दूसरा धर्मस्य सूक्ष्मोगतिः सत्य अति सूक्ष्म है। और किसी भी वाद में सत्य की खोज न्यायिक अधिकारी का प्रथम कर्तव्य था। उसके लिए उसे गवाह / पक्षकार की बात मानने से पूर्व उसका आचरण, व्यवहार व हावभाव सब देखना आवश्यक था। जितने प्रकार के वाद या शिकायतें न्यायिक क्षेत्राधिकार में थी उनको 18 भागों में विभाजित किया गया था संपत्ति ऋण संविदा, माल विक्रय, विभाजन, भागीदारी, मालिक एवं सेवक के बीच विवाद, भू स्वामी एवं किराएदार के बीच सीमा संबंधी विवाद, हमला, चोरी, हिंसा, या व्यभिचार, जुआ आदि के आरोप।

भारत में मुसलमानों के आगमन के साथ ही हमारे यहां व्यवस्था में परिवर्तन आवश्यक था। वैसे शुरू में जब मुसलमान इस देश में आए तो उनकी मंशा यहां न राज्य करने की थी और न ही यहां बसने की। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत की अर्थव्यवस्था पूर्वकाल से ही बहुत अच्छी रही थी। यहां अथाह धन संपदा मानी जाती थी और एक समय यह देश सोने की चिड़िया के नाम से संबोधित किया जाता था। दूर दूर तक विश्व के हर कोने में यहां की संपदा व संपत्ति की चर्चाएं थी। यहां के नाविक समुद्री रास्ते से दूसरे देशों में व्यापार करते थे और अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि मैं कहूं इन्हीं व्यापारियों के रहन-सहन, उनकी बनाई धन दौलत व वस्तुओं ने लोगों को यहां आने के लिए आकर्षित किया और इस देश पर विदेशी आक्रमण कर आक्रमणकारी जब भारत में आए और धीरे-धीरे अपने पैर जमाने लगे तो निश्चय ही था कि शासन की बागडोर भी अपने हाथ में लेना शुरू कर दिया था और फिर यह भी आवश्यक हो गया था कि अपना कानून इस देश में प्रचलित करें।

पहले विभिन्न विभिन्न देश के सुल्तानों ने इस देश में राज्य किया और फिर मुगलों ने। सभी इस्लाम धर्म का पालन करते थे। अतः उन्होंने व्यवस्था में ऐसी ही प्रणाली को अपनाया। वैसे यह स्पष्ट कर देना उचित है मेरा तात्पर्य केवल न्याय प्रणाली से ही है, ऐसा कभी नहीं हुआ कि इस देश के नागरिकों पर किसी भी काल में उस देश का या इस्लाम का कानून थोपा गया हो। यह बात अवश्य है कि धर्म परिवर्तन स्वेच्छा से था, जबरदस्ती इस देश की परंपरा नहीं रही है। वह मुसलमानों के जमाने में भी हुआ जिन्होंने उस धर्म को अंगीकार कर लिया उनके लिए स्वाभाविक ही था कि वह उसी इस्लाम के कानून का पालन करें परंतु व्यवस्था वही पड़ी जो शासन ने डाली। मुसलमानों के अनुसार उनकी न्याय प्रणाली खुद प्रॉफिट की दी हुई उन्होंने ही उसकी नींव डाली और सुदृढ़ व्यवस्था थी। मुगल बादशाह इंसाफ पसंद होते थे और मुस्लिम शासक न्याय करना धर्म का एक हिस्सा मानते थे। कुरान शरीफ के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि न्याय को खुदा के बराबर माना गया है, जहां हर चीज का तोल एक से मापदंड व नापतोल से होता है। इंसाफ देना खुदा की इबादत माना गया है और यदि इंसाफ करने वालों की कुछ भी रुचि परोक्ष अथवा अपरोक्ष उस मामले में है तो वह उसको नहीं सुन सकता था। न्याय करने वाला काजी या कादरी कहलाता था।

''बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ''

एक काजी के सम्मुख एक गुलाम का मामला प्रस्तुत हुआ। काजी ने जुर्म साबित पाया और 10 कोड़े की सजा सुनाई। उस व्यवस्था में काजी स्वयं कोड़े मारता था। जैसे ही काजी चौक में आकर कोड़े मारने लगा, गुलाम ने चाबुक पकड़ लिया और दोनों गुथमगुत्था हो गए। काजी तगड़ा था, गुलाम कोशिश कर सीने पर बैठ गया, उसके थप्पड़ मारने ही वाला था कि गुलाम ने उसके मुंह पर थूक दिया। काजी फौरन खड़ा हो गया और गुलाम को नहीं मारा। लोगों ने कहा इसने हुकुम उदूली की है व कोर्ट की तोहीन की है। अतः सजा ए मौत मिलनी चाहिए। काजी ने कहा इसके केस का फैसला अब खलीफा करेगा क्योंकि मामला अब हमारे और उसके बीच का है और अपने खुद के मामले में हम फैसला नहीं करेंगे। यह हादिस बताती है कि न्यायाधीश अपने स्वयं निर्णय नहीं करते थे।

ऐसी एक हादिस में आया है खलीफ उमर ने एक काजी मुकर्रर किया। उसके यहां एक विदेशी व्यापारी के विरुद्ध खलीफा ने स्वयं एक रिपोर्ट दर्ज की और काजी की अदालत में हाजिर हुए। खलीफ को देखकर काजी कुर्सी से खड़े होकर उनको आदाब किया। उमर ने इसे काजी द्वारा न्यायालय का अपमान समझा और उसको हटाकर दूसरा काजी मुकर्रर किया। उमर ने कहा काजी खलीफा से या और किसी से बड़ा है जब वह न्याय की कुर्सी पर बैठा होता है। काजी ने उस कुर्सी से उठकर पक्षपात का सबूत दिया है।

ऐसी कितनी ही मिसालें देखने को मिलती है जिनसे यह स्पष्ट होता है कि जज का दर्जा खुदा के बाद दूसरा माना जाता था और सुल्तान या बादशाह भी उसके ऊपर नहीं आते थे। मध्यकालीन युग के इतिहास में बलबल वगैरह की न्यायप्रियता के किस्से पढ़ने को मिलते हैं और जहांगीर का न्याय तो आज तक जाना जाता है और याद किया जाता है। मैं यह नहीं कहती कि इनमें विकृतियां नहीं आई, बहुत आई, खासतौर से जब गद्दी की लड़ाई शुरू थी या फिसर शासन कमजोर पड़ जाता था तो न्याय और कानून ताक में रख दिये जाते थे और अन्याय का शासन शुरू हो जाता था। ऐसे भी समय रहे हैं जब सिपहसालार या सूबेदार या कोई कोतवाल तक खुद ही अपने को न्यायिक अधिकारी समझने लगता था। कचहरियां ठीक से गठित नहीं होती थी। काजी, मुल्ला, मौलवी, वजीर, बादशाह तक पहुंच भी मुश्किल थी। और घेराबंदी की वजह से आम आदमी को कोई न्याय भी नहीं मिल पाता था। इसके विवादित विश्वप्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि अकबर से औरंगजेब तक न्यायिक व्यवस्था बड़ी सुदृढ़ थी। काजी मुकर्रर करने पर उसे कहा जाता था कि वह न्यायप्रिय रहे। ईमानदार व निष्पक्ष रहे, खुली कचहरी में न्याय करें और इसे कचहरी का महकमा कहा जहां राजा स्वयं अपने वज़ीरों की सलाह से न्याय करता उसे महकमा खास कहते।

हुक्मनामे का जिक्र श्री सरकार ने किया है जिसमें कहा है कि काजी के लिए यह मुनादी थी कि वह जिस जगह रहता हो उस जगह के लोगों से कोई उपहार नहीं ले। श्री सरकार ने अपनी पुस्तक मुगल एंड मिनिस्ट्रेशन में लिखा है कि विधि और न्याय विभाग की सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि उस समय कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी, ऊपर से नीचे तक कोई नियमित श्रृंखलाबद्ध न्यायालयों का गठन नहीं था और न ही क्षेत्रों के अनुपात में न्यायालयों का समुचित वितरण था। परिणामत: देश के काजी और सदर की अदालतों में मुकदमों का अंबार लग गया।

यह सब होते हुये भी भारत की न्याय व्यवस्था पर मुस्लिम सभ्यता की बहुत गहरी छाप पड़ी। उसका एक कारण यह भी था कि उन्होंने उर्दू भाषा का चलन किया और करीब-करीब सब जगह ही कानूनी क्षेत्र में उर्दू के ही शब्दों का प्रयोग होने लगा चाहे वह कचहरी या अदालत हो, मुद्वई मुद्वायला या फरीकेन या फिर तनकियात हो, फिर कोई और जैसे सदरे दिवानी अदालत।

अंग्रेजों ने जब भारत में अपने पैर जमाने शुरू किये तो धीरे-धीरे अपने यहां के यानि ब्रिटेन के कानूनों को तोड़ मरोड़ कर तथा जटिल बना कर अपने हितों को सुरक्षित रखते हुये भारतीयकरण कर यहां भी एंग्लो सेक्सन ज़्यूरिसपूडेन्स को लागू किया। यहां यह लिखना भी उचित होगा कि अंग्रेजों ने जब यहां के लिए कानून बनाने शुरू किये तो उन्होंने अंग्रेजी के अलावा उर्दू भाषा को अदालती कार्रवाहियों के साथ जोड़ा और नतीजा यह हुआ कि करीब-करीब सभी कचहरियों में उर्दू भाषा का प्रयोग होने लगा और वही कचहरी की भी जुबान बनने लगी। प्रक्रियात्मक विधियां ज्यादा बन गयी और प्रक्रियाऐं लंबी होने लगी। वैसे सिद्धांतत: न्यायपालिका को स्वतंत्र दर्जा ही दिया गया और निष्पक्षता को सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ। न्यायालयों की स्थापना का भी एक रोचक प्रसंग रहा है। वैसे यदि हम गहराई से देखें तो कोर्ट शब्द अंग्रेजों ने लैटिन शब्द क्यूरिया से लिया है जो वहां की सभ्यता, राजा का वह महल व निवास होता जिस जगह बैठकर सम्राट अपनी समस्त शासित प्रजा के न्यायिक कार्य करता था। श्री एच. पी. दुबे अधिवक्ता इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अपने एक लेख ओरिजन एंड एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ कोर्ट्स में इस बाबत विस्तार से दृष्टि डाली है। उनके अनुसार न्यायलय न्यायाधीशों का एवं अन्य ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो वैधानिक तौर पर नियुक्त होने के पश्चात दीवानी, फौजदारी, राजस्व, फौजी, धार्मिक इत्यादि मामलों में सुनकर वाद का निर्णय करें।

मुगलों के शासनकाल के दौरान ही अंग्रेजों ने भारत में आकर ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की और इसी के साथ न्यायिक प्रक्रिया में भी उनका दखल शुरू हो गया। हालांकि कानून बनाने की असल प्रक्रिया बाद में शुरू हुई। इस व्यवस्था को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो सन् 1600 से 1857 ए.डी. तक, दूसरा 1857 के पश्चात।

इतिहास के सभी छात्र जानते हैं कि ब्रिटेन की तत्कालीन महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने ईस्ट इंडिया कंपनी को समस्त भारत में व्यापार करने हेतु अनुमति सन् 1600 में दी और इसके एक वर्ष बाद ही कंपनी को यह अधिकार भी दे दिये कि कंपनी अपने कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिये यदि आवश्यक समझे तो अपने आदेश या कानून पारित करने को सक्षम होगी। कंपनी ने जगह-जगह अपने कारखाने स्थापित करने की शुरुआत की और किलेबंदी भी की। कुछ समय तक तो वह मुगल शासकों से भद्रजबान में किलेबंदी करने की अनुज्ञा प्राप्त करते रहे परंतु धीरे-धीरे अपने पैर मजबूत करते रहे।

न्यायिक व्यवस्था में यह एक ऐसा समय था जब भ्रष्टाचार अपने चरम सीमा पर था और अंग्रेज अफसर येन केन प्रकारेण अपना अस्तित्व यहां के न्यायिक अधिकारियों के समक्ष महसूस कराना चाहते थे और ऐसा करने में यदि कंपनी के आला अफसरों को ब्रिटेन के निवासियों के विरुद्ध या अन्य अंग्रेजी व्यापारिक प्रतिष्ठानों के विरुद्ध कोई झगड़ा हो तो काजी या जज को भ्रष्ट करने में अपनी शान समझते थे। मूर्स इंडियन अपील में 1836 का एक निर्णय है, मेजर ऑफ़ लॉयस बनाम ईस्ट इंडिया

कंपनी का। उसमें न्यायमूर्तियों ने लिखा है कि नवाब जब न्याय करने के लिये न्यायाधीश अथवा काजी को मुक़र्रर करते थे तो कंपनी के कर्मचारी उनको न्यायालय में न आने के लिए भी रिश्वत देते थे। वैसे अंग्रेजों के बीच आपस में कोई भी विवाद हो तो कंपनी की व्यवस्था के अनुकूल यूरोपियन ही उनका केस तय करने को सक्षम था। 1726 में तो सम्राट जार्ज प्रथम ने एक आदेश द्वारा मद्रास, बम्बई, व फोर्ट विवियन में मेयर की कोर्ट्स की स्थापना के आदेश जारी कर दिये और उनको दीवानी वाद वगैरह सुनने के अधिकार दे दिये गये और उसकी अपील केवल इंग्लैंड में ही हो सकती थी। इसके पश्चात एक आदेश पारित कर ब्रिटिश सल्तनत के कानून यहां लागू करने शुरू कर दिये और इसी आदेश द्वारा हर शहर में जहां जहां भी वह फैले हुये थे जस्टिस ऑफ पीस बनाने की परंपरा डाली। इसके बाद 1753 में जॉर्ज द्वितीय ने एक और संशोधन कर न्यायालयों को हिज मेजेस्टीज कोर्ट्स की संज्ञा दी। वैसे वहां उल्लेखनीय है कि जो देशी रजवाड़े अथवा अमीर, उमराओं और नवाबों की जगह थी वहां वह मनमाने तरीके से अपने ही कानून के मुताबिक कार्य करते थे। ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यकाल में सर्वप्रथम यदि अंग्रेजों ने कहीं भी एंग्लो सेक्सन ज़्यूरिसपूडेन्स को लागू किया तो उसका सूत्रपात पश्चिम बंगाल में ही हुआ। तत्पश्चात उत्तर प्रदेश के कुछ शहरों में वही व्यवस्था कायम की। उसके बाद तो लॉर्ड क्लाइव, वारन हेस्टिंग्स जैसे वायसराय ने जमीनदारी, तालुकदारी दीवानी, फौजदारी सभी तरह के झगड़ों में अपना कानून यहां प्रचलित किया और फिर कार्न वालिस के समय (1793) में तो ढेर सारे कानून लागू किये गये। उसने जिला न्यायालय बनाये और सिटी मजिस्ट्रेटों की परंपरा डाली। उसने सर्विस कोर्ट भी बनाई परंतु उस कोर्ट में केवल अंग्रेज जज को ही बैठने का हक दिया।

यह कार्न वालिस ही था जिसने न्यायपालिका एवं कार्यपालिका को भिन्न-भिन्न किया। दरअसल में इसी के साथ न्यायिक स्वतंत्रता का झगड़ा शुरू हुआ, ऐसी मान्यता है। 1773 में बंगाल में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना हुई तब से 1857 तक जबकि स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु पहली लड़ाई अंग्रेजों तक हुई। अनेकानेक बार प्रक्रियाओं में परिवर्तन होते रहे और कभी किसी हद तक लोगों को सस्ता, सहज व समय पर न्याय नहीं मिलता था। सच पूछा जाय तो अंग्रेजों की नीति ही हमेशा यही रही कि कानून ऐसे बनाओ कि लोग अपनी सारी बुद्धि, विवेक व ताकत कचहरी के चक्कर काट-काट कर ही खत्म कर दें। 1858 के पश्चात ही जाब्ता-फौजदारी, जाब्ता-दीवानी वगैरह बनी तथा अन्य सभी कानूनों का निर्माण हुआ जिनमें से अधिकतर आज भी लागू हैं। आज हमारी जो व्यवस्था है उनके विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सभी पाठक इसे जानते हैं। हां यह लिखना आवश्यक होगा कि ऐसे कितने ही क्षेत्र हैं जिनमें कानूनों में आमूल चूल परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। हमारे अपने देश में एक समय था जब लोग गांव की चौपाल पर बैठकर पंच निर्णय किया करते थे और वह समाज में मान्य थे। परंतु समय परिवर्तनशील है और परिस्थितियों में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से बदलाव आता रहता है और आया भी है। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात हमने जिस संविधान को अंगीकृत किया उसे 102 बार से ज्यादा संशोधित कर लिया फिर भी सामाजिक चेतना इतनी नहीं बढ़ी जितनी संविधान के निर्माताओं ने सोची थी। न्यायपालिका पर काम का बोझ हमेशा ही बढ़ता रहा है और सारे देश में लाखों मुकदमे लंबित हैं और लोग आस लगाये हुये वर्षों तक अपने मुकदमों का फैसला होने का इंतजार करते रहते हैं। साधारण प्रक्रियाओं से सस्ता, सहज व समय पर न्याय मिलना असंभव

सा है इसीलिये इसके विकल्प के रूप में लोक अदालत की परिपाटी डाली जा रही है। हमारे देश में तो इसमें बहुत ही प्रगति हुई है परंतु फिर भी यह कतई जरूरी नहीं है कि सभी पक्षकार इससे संतुष्ट हों। वाद से पूर्व समझौतों का प्रयास करने की प्रक्रिया का भी विचार हो रहा है और आरबीट्रेशन को भी बढ़ावा दिया जा रहा है।

साहित्य की समीक्षा (Review literature)

पूर्व-मुकदमेबाजी मध्यस्थता को एक सहमति प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है जिसके तहत वादी और प्रतिवादी एक निष्पक्ष न्यायनिर्णायक की सहायता से, मुकदमे की स्थापना से पहले या अदालत को नोटिस भेजने से पहले भी विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाने के लिए एक साथ आते हैं।

भारतीय न्यायिक प्रणाली में विद्यमान यथास्थिति को बदलने के लिए, वैकल्पिक विवाद निवारण (एडीआर) तंत्र के रूप में मध्यस्थता को आगे का रास्ता माना जा सकता है। उसके लिए, मुकदमेबाजी पूर्व मध्यस्थता की अवधारणा केक पर एक चेरी की तरह है। पूर्व-मुकदमेबाजी मध्यस्थता को एक सहमति प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है, जिसके तहत वादी और प्रतिवादी एक निष्पक्ष न्यायनिर्णायक की सहायता से, मुकदमे की स्थापना से पहले या अदालत को नोटिस भेजने से पहले उनके बीच विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाने के लिए एक साथ आते हैं। यह निपटान का एक पसंदीदा तरीका है क्योंकि एक मुकदमे के विपरीत, जहां एक न्यायाधीश न्यायनिर्णायक होता है, मध्यस्थता में न्यायनिर्णायक पार्टी/पार्टियों की पसंद होता है और यह विवादकर्ताओं के लिए जीत की स्थिति भी सुनिश्चित करता है क्योंकि प्रक्रिया के मुख्य साधन बातचीत और समझ होते हैं |

पूर्व-मुकदमेबाजी मध्यस्थता में घरेलू, वाणिज्यिक, उपभोक्ता, संपत्ति, मामूली आपराधिक मामलों सहित अन्य मामलों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। पारिवारिक मामलों से संबंधित विवादों में, पारिवारिक अदालतों को पार्टियों को मध्यस्थता का विकल्प चुनने के लिए मनाने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। हालांकि, भारतीय कानून मुकदमेबाजी से पहले के चरण में अनिवार्य मध्यस्थता का प्रावधान नहीं करते हैं। के. श्रीनिवास राव बनाम डी ए दीपा ((2013) 5 एससीसी 226) के मामले में उसी की औपचारिक मान्यता प्राप्त हुई थी, जहां एक वैवाहिक विवाद का समाधान विचाराधीन मुद्दा था।

वाणिज्यिक विवादों के मामलों में पूर्व-मुकदमा मध्यस्थता की अवधारणा का एक उचित संहिताकरण वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 में पाया जा सकता है। बाद में 2018 में एक संशोधन द्वारा धारा 12 ए को सम्मिलित किया गया जिसने पूर्व-मुकदमेबाजी मध्यस्थता का प्रावधान किया। धारा कहती है कि ऐसे मामलों में जो अधिनियम के तहत तत्काल अंतरिम राहत पर विचार नहीं करते हैं, पार्टियों द्वारा पूर्व-संस्थागत मध्यस्थता का सहारा लिया जाना चाहिए। वाणिज्यिक विवादों के मामलों में इस तरह की संस्था-पूर्व मध्यस्थता की प्रक्रिया वाणिज्यिक न्यायालयों (पूर्व-संस्था मध्यस्थता और निपटान) नियम, 2018 में है। नियम यह निर्धारित करते हैं कि मध्यस्थता शुरू करने के लिए वादी को राज्य कानूनी सेवाओं के साथ एक आवेदन दायर करने की आवश्यकता होती है। कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत गठित प्राधिकरण या जिला कानूनी सेवा प्राधिकरण। प्राधिकरण को दस दिनों की अवधि के भीतर दूसरे पक्ष को इसके सामने पेश होने और मध्यस्थता की कार्यवाही में भाग लेने के लिए सूचित करने की आवश्यकता है। दस दिनों की अवधि के पूरा होने पर, प्राधिकरण पक्षकार को एक अंतिम नोटिस भेजेगा, जिसका जवाब देने में विफल रहने पर प्राधिकरण द्वारा मध्यस्थता प्रक्रिया के गैर-शुरुआतकर्ता के रूप में समझा जाएगा। इसके विपरीत, यदि दूसरा पक्ष

नोटिस का जवाब देता है तो वार्ता और बैठकों के पूरा होने के साथ, समझौता तैयार किया जाएगा और एक समझौते में दर्ज किया जाएगा।

कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत केंद्र सरकार द्वारा अधिकृत प्राधिकरण वादी द्वारा किए गए आवेदन की तारीख से दो महीने के संभावित विस्तार के साथ तीन महीने की अवधि के भीतर मध्यस्थता की प्रक्रिया को पूरा करेगा। मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, १९९६ की धारा ३० के तहत किए गए समझौते का वही दर्जा और प्रभाव होगा जो एक मध्यस्थ पुरस्कार के रूप में होगा |

मध्यस्थता की इस अवधारणा के अनुसार, कानूनी संबंधों से उत्पन्न होने वाले विवाद, नागरिक प्रकृति के मामले / मामले, धन के मामले, संविदात्मक विवाद आदि, प्राथमिकी दर्ज करने से पहले मध्यस्थता और सुलह केंद्र में पूर्व-मुकदमे के तहत प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके अलावा, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 74 के संदर्भ में, निपटान समझौते की वही स्थिति और प्रभाव है जैसे कि यह धारा 30 के तहत मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए विवाद के सार पर सहमत शर्तों पर एक मध्यस्थ पुरस्कार है।

पूर्व-मुकदमेबाजी मध्यस्थता - कमजोरी का संकेत या ताकत का संकेत?

जॉन बी केस्लर ने अपने लेख में लिखा है कि किसी भी प्रकार की मध्यस्थता के सफल होने के लिए, दोनों पक्षों को पक्षों के बीच के मुद्दों में मध्यस्थता करनी चाहिए। सलाह इस प्रक्रिया को क्यों और कब प्रोत्साहित कर सकती है? क्या यह कमजोरी की निशानी है या सच में ताकत की निशानी है? ऐसी प्रक्रिया से किसे लाभ हो सकता है? ऐसी प्रक्रिया कब मूल्यवान हो सकती है? क्या यह एक रचनात्मक रणनीति है? यह लेख इन मुद्दों की पड़ताल करता है और निष्कर्ष निकालता है कि प्रारंभिक मध्यस्थता रचनात्मक रणनीति हो सकती है।

मुकदमेबाजी में पूर्व मध्यस्थता क्यों करते हैं?

मुकदमा दायर करने से पहले मध्यस्थता करने के कई कारण हैं। सबसे पहले, कुछ अनुबंधों को मध्यस्थता से पहले या प्रचलित पार्टी अटॉर्नी शुल्क एकत्र करने के लिए मुकदमा दायर करने से पहले मध्यस्थता की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, कैलिफ़ोर्निया आवासीय खरीद अनुबंधों के लिए कैलिफ़ोर्निया एसोसिएशन ऑफ़ रीयलटर्स (सीएआर) को मध्यस्थता दायर करने से पहले मध्यस्थता की आवश्यकता होती है, ज्यादातर मामलों में, मध्यस्थता या अदालती कार्रवाई में प्रचलित पार्टी शुल्क एकत्र करने के लिए। अन्य उद्योग समझौतों में अन्य समान प्रावधान हैं जैसे कुछ स्टॉक समझौते।

साथ ही, वादी पर मुकदमेबाजी बहुत भावनात्मक रूप से समाप्त हो सकती है, विशेष रूप से बहुत भावनात्मक मामलों में। इसके अतिरिक्त, जैसे-जैसे मुकदमा चलता है, पक्षों के बीच संबंध और भी बिगड़ सकते हैं। इसके अलावा, विवाद और अधिक जटिल हो सकता है क्योंकि मुकदमेबाजी चलती है और विवाद बढ़ता है। बेशक, जल्दी मध्यस्थता के लिए सबसे सम्मोहक कारणों में से एक गर्मागर्म मुकदमेबाजी के मामलों में खर्च है।

नौकरी और परिवार से दूर समय मुकदमेबाजी पूर्व मध्यस्थता के लिए एक और औचित्य और प्रेरणा हो सकता है। कई बार मध्यस्थता में मैं समझौते को प्रोत्साहित करूंगा यदि सौदा काम करता है, जब मैं भावनात्मक और कभी-कभी शारीरिक टोल देखता हूं कि लंबे समय तक मुकदमेबाजी का पारिवारिक संबंधों और सामान्य रूप से वादी के जीवन पर इसका प्रभाव पड़ता है।

कुल मिलाकर, प्रक्रिया की शुरुआत में मध्यस्थता करने की एक चाल है। यहां तक कि अमेरिकन बार एसोसिएशन सेक्शन ऑफ डिस्प्यूट रेजोल्यूशन ने भी जल्दी मध्यस्थता करने के लिए नियोजित अर्ली डिस्प्यूट रेजोल्यूशन (PEDR) टास्क फोर्स के साथ जुड़ लिया है। यह कार्यक्रम वकीलों और ग्राहकों के लिए पीईडीआर के विचार को बढ़ावा देने और जल्द से जल्द संभव समय में तटस्थों का उपयोग करने में मदद करने के लिए है।

www.americanbar.org/groups/dispute_resolution/resources/planned_early_dispute_resolution_pedr.html)

एक अन्य क्षेत्र जहां प्रारंभिक मध्यस्थता सहायक होती है, वह है परिवार कानून के क्षेत्र में। विघटन कार्यों में या कार्रवाई दर्ज होने से पहले ही, मध्यस्थता संघर्ष को कम करने, लागत को कम रखने, और भी अधिक भावनाओं को गर्म होने से रोकने और प्रक्रिया को तेज करने में सहायक हो सकती है।

इसी तरह, कई बार व्यावसायिक विवाद तलाक की तरह होते हैं, लेकिन व्यावसायिक संदर्भ में। साझेदारी विवादों या शेयरधारक विवादों में, एक प्रारंभिक मध्यस्थता और विशेष रूप से एक पूर्व-मुकदमेबाजी तटस्थ हस्तक्षेप वास्तव में एक व्यावसायिक संबंध को बचा सकता है।

<u>पूर्व-मुकदमेबाजी या प्रारंभिक मध्यस्थता की तैयारी कैसे करें</u>

पूर्व-बंधाव मध्यस्थता में पहला कदम यह सत्यापित करना है कि दोनों या सभी पक्ष और वकील विवाद का शीघ्र समाधान करने के लिए तैयार हैं। कमजोरी का संकेत होने के बजाय, वादी/दावेदार से एक अच्छी तरह से तैयार की गई मांग एक मजबूत रचनात्मक रणनीति हो सकती है। प्रतिवादी को एक वास्तविक नकारात्मक जोखिम दिखाना प्रारंभिक तटस्थ भागीदारी को प्रोत्साहित कर सकता है। इसी तरह, एक प्रतिवादी जो एक मांग पत्र प्राप्त करता है, लागत और लंबी मुकदमेबाजी के तनाव को बचाने के लिए वकील द्वारा शीघ्र मध्यस्थता का अनुरोध करके अच्छा व्यावसायिक निर्णय दिखा सकता है।

एक विस्तृत मांग पत्र शीघ्र समाधान की कुंजी हो सकता है। यह मांग अवधारणा रोजगार-कानून क्षेत्र में विशेष रूप से मूल्यवान है। ऐसे मामलों में जहां कथित गलत काम में ऐसे व्यक्ति शामिल हो सकते हैं जो किसी संगठन में उच्च पद पर हैं और दावेदार के वकील ने शोध किया है, मुकदमेबाजी से पहले की मांग एक अच्छा ग्राहक परिणाम दे सकती है। यह निश्चित रूप से है, अगर प्रशासनिक कार्यवाही और/या मुकदमेबाजी या मध्यस्थता कार्रवाई की आवश्यकता वाले कोई क़ानून-सीमा मुद्दे नहीं हैं।

हालांकि, अगर समय दावेदार के पक्ष में है, तो एक अच्छी तरह से सोची-समझी, तथ्यात्मक बयानों के साथ अच्छी तरह से तैयार की गई मांग और यहां तक कि विस्तृत कानूनी विश्लेषण से क्लाइंट को मुकदमेबाजी विवाद के लंबे समय तक तनाव से बचने में मदद मिल सकती है और निपटान निधि का शीघ्र प्रवाह हो सकता है।

मुकदमा-पूर्व मध्यस्थता करने में वादी को लाभ

- लंबे समय तक, संभावित रूप से भावनात्मक रूप से निक्षेपण और विलंब से बचा जाता है
- निपटान निधि की वसूली के लिए समय कम करता है
- वादी को अपने जीवन में जल्दी आगे बढ़ने की अनुमति देता है
- परिणाम की निश्चितता देता है
- गोपनीयता बनाए रखता है

पूर्व-मुकदमा मध्यस्थता करने में बचाव के लिए लाभ

- कंपनी में व्यवधान से बचा जाता है
- शर्मनाक स्थिति में विवाद को गोपनीय रखने में मदद करता है (विशेषकर रोजगार में)
- बड़ी मुकदमेबाजी लागत को कम करता है
- बीमा दरों को मुकदमेबाजी के जोखिम से बढ़ने से रोकता है

मुकदमा-पूर्व मध्यस्थता शुरू करने का सबसे अच्छा समय कब है?

आमतौर पर, यदि अनौपचारिक खोज संभव है, तो महंगी खोज और जमा होने से पहले मध्यस्थता समय पर हो सकती है। अन्य मामलों में, मध्यस्थता से संभव होने वाले समाधान के लिए पहले महत्वपूर्ण बयान दिए जाने चाहिए। कुछ मामलों में, यह एक सारांश निर्णय प्रस्ताव की पूर्व संध्या तक नहीं होता है जब मध्यस्थता समय पर होती है। हाई प्रोफाइल रोजगार और मनोरंजन के मामलों में पहले रणनीति बेहतर हो सकती है।

निष्कर्ष

कभी-कभी, पूर्व-मुकदमेबाजी मध्यस्थता या प्रारंभिक मध्यस्थता विकल्प नहीं होते हैं। दूसरा पक्ष सहमत नहीं होगा, दोनों पक्षों के लिए जोखिम अभी स्पष्ट नहीं हैं, खोज करने की आवश्यकता है। लेकिन, जहां समय सही है, सभी के लिए लाभ पूर्व-मुकदमेबाजी मध्यस्थता को रचनात्मक रणनीति बना सकता है।

''बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ''

अध्ययन का उद्देश्य (Objective of the study)

उद्देश्य:-

प्राइवेट अदालतें वे अदालतें हैं जो सरकार की अनुमति से पब्लिक- प्राइवेट पार्टनरशिप द्वारा चलाई जाती हैं और संविधान के तहत स्थापित अदालत को दी गई सभी शक्तियों के साथ निवेश की जाती हैं। प्राइवेट अदालतें काम करने में स्वाभाविक रूप से लचीली होती हैं और सरकारी अदालतों की तुलना में अधिक कुशल होने के लिए बाध्य होती हैं क्योंकि अनुभवजन्य साक्ष्य हैं कि निजी संगठन अधिक कुशलता से चलाए जाते हैं।

एक गहरी मानसिकता है जो एक प्राइवेट संस्था से अधिक, सरकार पर भरोसा करती है क्योंकि सरकार अधिक शक्तिशाली होने के कारण अधिक विश्वास हासिल करती है। सरकार का काम कानून बनाना और उन कानूनों का पालन करते हुए सरकार चलाना है। कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो किसी भी मामले में पुलिस, कानून और व्यवस्था, सेना जैसे निजी संगठनों को सौंपे जाने चाहिए। कर अधिरोपण और अन्य नियामक कार्य जिसमें शक्ति शामिल है लेकिन गलती से न्यायिक कार्य शक्ति का कार्य नहीं है क्योंकि न्यायाधीश नीतिगत निर्णय नहीं ले सकते हैं। उनका काम पेशेवर है क्योंकि यह कानूनी पेशे से आने वाले व्यक्ति द्वारा चलाया जाता है। वे स्वभाव से सत्ता संरचना का हिस्सा नहीं हैं। जज का काम वकीलों की मदद से रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर मामलों का फैसला करना है, लेकिन अंततः यह उनका पेशेवर निर्णय है कि वे सबूतों को तौलें और अपने कानूनी दिमाग का उपयोग करके यह घोषित करें कि सच्चाई क्या है। वह डॉक्टर, इंजीनियर और वास्तुकार की तरह एक और पेशेवर है और गलती से उसे किसी दिव्य आभा के साथ निवेशित किया जाता है। उनका काम कोई भी वकील समान क्षमता के साथ कर सकता है। उसकी शक्ति उसे निर्णय लेने के लिए मामलों को सौंपे जाने से उत्पन्न होती है। पद पर उनकी नियुक्ति उन्हें सरकारी संगठन के बाहर किसी अन्य सक्षम व्यक्ति की तुलना में अधिक सक्षम नहीं बनाती है, इसलिए रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर सबूत लेने और मामले का फैसला करने का कार्य ही महत्वपूर्ण होता है | इससे शायद ही कोई फर्क पड़ता है कि मामलों का फैसला सरकारी संगठन या प्राइवेट संगठन द्वारा किया जाता है, जब तक कि सरकारी संगठन द्वारा अपील का फैसला किया जाता है जिसमें सरकार नियामक शक्ति निभाएगी जो लोगों के प्रतिनिधियों द्वारा प्रयोग की जा रही लोगों की शक्ति है।

इस शोध का उद्देश्य निम्नतम स्तर पर वर्तमान प्रणाली के विकल्प के रूप में प्राइवेट अदालतों के विकल्प का पता लगाना और मूल्यांकन करना है और इस संबंध में लोगों के विचारों को इस क्षेत्र में और आम जनता को अलग-अलग करना है | इस उद्देश्य के लिए उस पर उपलब्ध सामग्री को एकत्र करना ताकि लोगों को सस्ता और सुलभ न्याय प्रदान करने के लिए एक उपकरण के रूप में विकसित होने के संदर्भ में कल्पित प्राइवेट अदालत का उचित मूल्यांकन किया जा सके, जो कि कई कानून आयोगों के काम करने और आंशिक कार्यान्वयन के बावजूद उनकी रिपोर्ट में मामलों के शीघ्र निपटान के लिए कुछ भी ठोस नहीं किया जा सका और वह भी वादी को अत्यधिक लागत के साथ प्राप्त होता

है, इसलिए इस सख्त जरूरत को पूरा करने के लिए यह अध्ययन आम लोगों के साथ-साथ विभिन्न सरकारों और महत्वपूर्ण मुद्दों पर जनमत बनाने पर व्यापक प्रभाव रखने वाले लोगों को इस अवधारणा से संबंधित सभी सूचनाओं के साथ प्रदान करने के लिए किया जा रहा है ताकि उन्हें एक सुविचारित राय बनाने में मदद मिल सके। जिसके साथ शुरू करने से न्याय के प्रशासन के लिए एक कुशल प्रणाली का विकास हो सकता है जो अंततः लोगों के सामाजिक जीवन और मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालेगा और उन्हें एक ही जीवन बिताने के बंधन से मुक्त कर देगा और कुछ मामलों में पीढ़ी कानूनी मामलों से लड़ने वाले लोगों की संख्या में कमी आएगी | इस क्षेत्र में बहुत अधिक शोध नहीं किया गया है, इसलिए यह एक हरित क्षेत्र की अवधारणा है जिसका व्यापक रूप से समाज पर गहरा प्रभाव पड़ने की संभावना है, इसलिए इस शोध का उद्देश्य विशिष्ट रूप से न्यायिक प्रशासन और सामान्य रूप से देश के लिए महत्वपूर्ण है।

विभिन्न न्यायिक सुधारों के बावजूद न्यायिक प्रशासन में मामलों के शीघ्र निपटान या न्याय को उचित दर पर भारत के आम लोगों के लिए सुलभ बनाने के मामले में कुछ भी महत्वपूर्ण हासिल नहीं किया जा सका। वर्तमान न्यायिक प्रणाली में अक्षमता, अत्यधिक देरी और सच बोलने में भ्रष्टाचार जैसी कई विकृतियां हैं। एक साधारण मामले को भी निपटाने में दशकों लग जाते हैं और बड़ी संख्या में मामले एक ही पीढ़ी में समाप्त नहीं होते हैं। न्यायपालिका एक सरकारी संगठन होने के कारण कई बीमारियों से ग्रस्त है।

पहले लोग सोचते थे कि सरकारी संगठन में वेतन कम है लेकिन लोगों को ज्यादा काम करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कार्यकाल निश्चित है और सरकारी कर्मचारी को एक ही और अधिकतम सजा दी जा सकती है एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण और निजी संगठन में वेतन अच्छा है लेकिन कड़ी मेहनत करने की आवश्यकता है। लेकिन अब ऐसा नहीं है. अब सरकारी कर्मचारी को अधिक वेतन दिया जा रहा है लेकिन फिर भी उन्हें अपनी नौकरी की सुरक्षा के कारण कड़ी मेहनत करने की आवश्यकता नहीं है, जबकि निजी कर्मचारी को कम मिलने के बावजूद सरकारी कर्मचारी से ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है।

इसलिए लोग मानते हैं कि यदि आप किसी संगठन को सुस्त और अक्षम बनाना चाहते हैं तो उसे सरकारी संगठन बना लें। इसलिए किसी भी सरकारी संगठन में अंतर्निहित कमियां होती हैं जो इसे धीमा और अक्षम और भ्रष्टाचार का शिकार बनाती हैं। तो अदालत के निजीकरण का विचार कुछ लोगों को ईशनिंदा लग सकता है लेकिन वास्तव में यह एक शानदार विचार प्रतीत होता है। इसमें कई विधायी, सामाजिक, राजनीतिक और पेशे के मुद्दे शामिल हैं जिन्हें सिस्टम में पेश करने से पहले देखा जाना आवश्यक है। इसके परिचय में एक बड़ी योग्यता प्रतीत होती है, लेकिन कई स्तरों पर इसके पास पास मस्टर होगा। वर्तमान व्यवस्था इतनी दमनकारी और शोषक है कि उनके लिए यह एक आकर्षक क्षेत्र है, वे किसी भी बदलाव का विरोध करेंगे। इसके क्रियान्वयन में सबसे बड़ी बाधा इन निहित निहित स्वार्थों से लड़ना होगा जिन्होंने इस दमनकारी व्यवस्था से बड़ी संपत्ति अर्जित की है और

बड़े संसाधनों के साथ इन ताकतों के खिलाफ लड़ाई लड़ना मुश्किल होगा। उस उद्देश्य के लिए एक मजबूत जनमत का गठन किया जाना है,

लेकिन यह इस तथ्य के अधीन है कि प्राइवेट अदालतों की प्रणाली के कार्यान्वयन में अंतर्निहित योग्यता होनी चाहिए।

न्यायिक कार्य में दक्षता लाने के लिए न्यायपालिका को अपनी दैवीय स्थिति से वंचित करने की आवश्यकता है और प्रत्येक न्यायाधीश के कामकाज की बारीकी से जांच की आवश्यकता है लेकिन वर्तमान प्रणाली में अदालत की अवमानना के दमनकारी प्रावधान लोगों को चुप करा देते हैं और कोई भी जोखिम नहीं उठाता है। अदालत की अवमानना के लिए उन्हें दोषी ठहराया जा रहा है, भले ही वे एक न्यायाधीश या सामान्य रूप से न्यायपालिका के कामकाज की रचनात्मक और निष्पक्ष आलोचना की पेशकश करना चाहते हों। वर्तमान परिस्थितियों में न्यायपालिका की भूमिका को कम किया जाना चाहिए और प्राइवेट अदालतों द्वारा पारित निर्णयों से उत्पन्न होने वाली अपील को संभालने के लिए प्रतिबंधित किया जाना चाहिए।

प्राइवेट अदालतों को मुनाफाखोरी या केवल पैसा कमाने के लिए प्रेरित होने के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए, जो निष्पक्ष खेल और इक्विटी के सभी सिद्धांतों को हवा में उड़ा देता है। उदाहरण के लिए यदि दान वितरण को माना जाता है तो कई निजी धर्मार्थ संगठन, सरकारी संगठन की तुलना में बहुत बेहतर काम कर रहे हैं। इसलिए निजीकरण कोई गंदा शब्द नहीं है। अगर हम गिनना शुरू करें तो बिना किसी जवाबदेही के सरकारी संगठन की तुलना में नियमन के तहत प्राइवेट संगठनों में कम कमियां होंगी।

वामपंथी लोग निजीकरण के किसी भी कदम का इस डर से विरोध करते हैं कि इससे मजदूर वर्ग का शोषण होगा लेकिन व्यवहार में प्राइवेट संगठन को खत्म करना असंभव है। अगर निजी संगठन इतना शोषक है तो सरकार सभी निजी संगठनों को अपने हाथ में क्यों नहीं लेती। वह ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि वह जानता है कि उसके पास इन संगठनों को चलाने के लिए साधन नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता है कि सरकार कुछ लोगों की रक्षा करेगी और उन्हें सरकारी संगठन में सुरक्षित कार्यकाल के साथ काम करने का विशेषाधिकार देगी, चाहे वे काम करें या नहीं और अन्य सभी को प्राइवेट संगठन द्वारा शोषण के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाएगा। निजी संगठन अनिवार्य रूप से शोषक और मुनाफाखोरी करने वाला संगठन नहीं है जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे पूंजीवादी देश द्वारा सिद्ध किया गया है, जहां न्यूनतम मजदूरी को सख्ती से लागू किया जाता है और लोगों को जेल भेज दिया जाता है, यदि वे अपने कर्मचारी को निर्धारित संगठन से अधिक भुगतान करते हैं। प्राइवेट कोर्ट प्रचलित कानून के तहत काम करेगी। वे किसी भी मामले में वर्तमान न्यायिक प्रणाली से अधिक मनमानी नहीं करेंगे, जहां एक न्यायाधीश बिना किसी दंड के एक स्पष्ट रूप से गलत निर्णय दे सकता है। न्यायपालिका के पास एक कम अच्छा बिंदु है जो किसी भी सरकारी संगठन के पास है और वह है लोगों के प्रति जिम्मेदार सरकार के नियंत्रण में काम करना। न्यायाधीशों को केवल न्यायाधीशों द्वारा ही दंडित या स्वीकृत किया जा सकता है। न्यायाधीशों की नियुक्ति न्यायाधीशों द्वारा की जाती है जो

किसी भी काउंटी में नहीं होती है। किसी भी देश में चाहे लोकतांत्रिक या निरंकुश न्यायाधीश , न्यायाधीशों का चयन नहीं करते हैं जैसा कि भारत में हो रहा है, इसलिए जो लोग प्राइवेट अदालतों की अवधारणा के बारे में सोचते हैं उन्हें समझना चाहिए कि वे गुणों को जिम्मेदार ठहरा रहे है, सरकारी संगठन को तथ्यों या तर्क से बाहर किए बिना। निजी अदालतों की इस तरह की फ़ोबिक राय, देश के नागरिकों को न्यायिक प्रशासन की अधिक कुशल और जिम्मेदार प्रणाली से वंचित कर देगी।

<u>अनुसंधान क्रियाविधि (Research Methodology)</u>

यह शोध अध्ययन असैद्धांतिक पद्धति (Non Doctrinal Method) पर आधारित है। भारत की वर्तमान न्यायिक व्यवस्था तथा लगातार लाखों केसों की बढ़ती हुई पेंडेंसी का पता लगाने के लिए और उसमें सुधार करने हेतु प्राइवेट अदालतों की स्थापना करना, क्या आधुनिक समय में उचित होगा या नहीं इस हेतु इस अध्ययन में राज्यसभा और लोकसभा की आधिकारिक वेब साइटों से डेटा संग्रहण करके विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है| आर्थिक मौद्रिक समीक्षा का विस्तृत अध्ययन कर भारत की संपूर्ण अधीनस्थ अदालतों, हाईकोर्ट व सुप्रीम कोर्ट में सिविल एवं क्रिमिनल केसों की पेंडेंसी का पता लगाने का प्रयास किया गया है|

<u>अनुसंधान डिजाइन</u>

<u>इस अध्ययन में कुछ शीर्षक शामिल होंगे -</u>

1. शीर्षक
2. अध्ययन का महत्व
3. अध्ययन का उद्देश्य
4. अनुसंधान परिकल्पना
5. सर्वेक्षण (Survey)

यह अध्ययन प्राथमिक / द्वितीयक अनुसंधान विधियों को जोड़ता है | इस प्रकार इस अध्ययन में विधि आयोग, चर्चा पत्र, भारत और दुनिया में विद्यमान मध्यस्थ कानून, कानून की किताबों, इंटरनेट, ई जनरल, कानूनी वेबसाइट, पत्रिका लेख, समाचार पत्र, पोर्टल तथा प्रश्नावली इत्यादि का प्रयोग किया गया है | **वर्तमान न्यायिक परिदृश्य में प्राइवेट अदालतें कितनी सफल होंगी या नहीं इस हेतु एक सर्वेक्षण करने का प्रयास किया गया है जिसमें लॉ स्टूडेंट, टीचर, असिस्टेंट प्रोफेसर, पीएचडी स्कॉलर, अधिवक्ता, न्यायाधीश, शिक्षा विभाग से जुड़े हुए सदस्य, व्यापारी, कानून एवं शासन विभाग से जुड़े हुए सरकारी कर्मचारी तथा आम व्यक्ति कि महत्वपूर्ण राय और सुझाव ली गई है, जिन्हें सर्वे में स्टेक होल्डर्स का नाम दिया गया है जो निम्न रूप से शाखा और उप शाखाओं में विभाजित किए गए हैं | जिसका एक सैंपल प्रेजेंटेशन नीचे दिया जा रहा है---**

Stake holder

1. **Practicing lawyer**

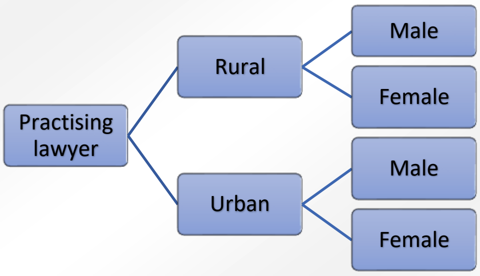

2. **Students & Teachers**

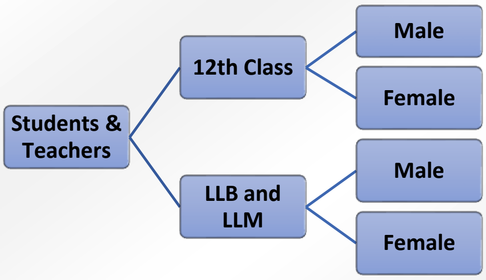

3. **General Person**

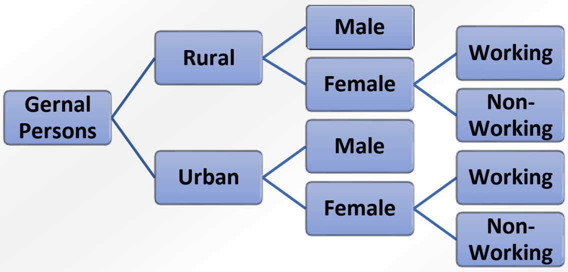

4. **Judges**

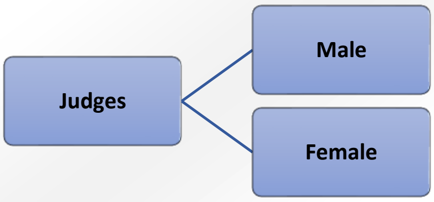

5. Education Department

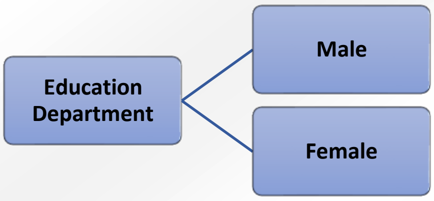

6. Businessman and Corporate Sector

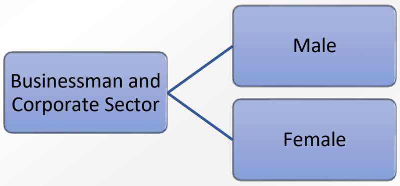

7. Members and Staff of law and justice department

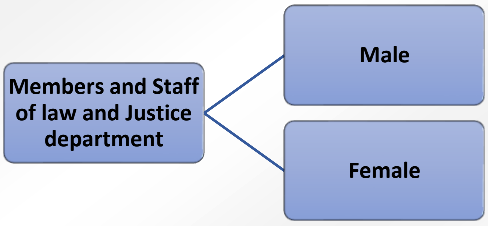

"बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ"

परिकल्पना (Hypothesis)

प्राइवेट अदालतों की अवधारणा--

भारत में प्राइवेट अदालतों के गठन की आवश्यकता क्यों है?

भारत में प्राइवेट अदालतों की स्थापना करने के लिए कई महत्वपूर्ण कारण हैं जो निम्नलिखित हैं---

1. बेंच फिक्सिंग
2. फर्जी डिग्रीधारी वकील
3. तंग आर्थिक बजट
4. जवाबदेही में सरकार की असमर्थ था
5. अदालतों पर काम का बढ़ता हुआ भारी बोझ (लंबित मामले)
6. महंगी एवं विलंब कारी न्यायिक व्यवस्था
7. वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र (ADR System) का व्यापक स्तर तक प्रचार प्रसार न होना |

विगत सात दशकों में राज्य की तीन अंगों की प्रदर्शन पर नजर डाली जाए तो न्यायपालिका को ही बेहतर माना जाएगा | अनेक अवसरों पर उसने पूरी निष्ठा और मुस्तैदी से विधायिका और कार्यपालिका द्वारा किए संविधान उल्लंघन को रोका है, लेकिन अदालतों में विचाराधीन मुकदमो की 3,00,00,000 की संख्या का पिरामिड देशवासियों के लिए चिंता और भय उत्पन्न कर रहा है | अदालती फैसलों में 5 साल लगाना तो सामान्य सी बात है ,लेकिन 20- 30 साल में भी निपटारा न हो पाना आम लोगों के लिए त्रासदी से कम नहीं है | न्याय का मौलिक सिद्धांत है कि विलंब का मतलब न्याय को नकारना होता है | देश की अदालतों में जब करोडो मामलों में न्याय नकारा जा रहा हो तो आम आदमी को न्याय सुलभ हो पाना आकाश के तारे तोड़ने जैसा होगा |

1. बेंच फिक्सिंग-- भारत की सर्वोच्च न्यायालय में बिचौलियों का दखल, फिक्सिंग के खेल और आने ले केस को कुछ विशेष बेंच में भेजने की जुगत लगाने अर्थात बेंच फिक्सिंग करने और न्यायिक आदेशों को प्रभावित करने की कोशीश के आरोप लगाए गए हैं जो अत्यंत गंभीर है | इसकी जांच का जिम्मा न्यायमूर्ति पटनायक को दिया गया है |
2. फर्जी डिग्रीधारी वकील--देश की कई बार कौंसिल का दावा है कि देश में 45 प्रतिशत फर्जी वकील है|
3. तंग आर्थिक बजट--तंग बजट ने कुछ राज्य सरकारों एवं संघीय कार्यकारी एजेंसियों को महंगी सरकारी सेवाओं के विकल्पों की तलाश करने के लिए इच्छुक किया है, इसलिए " निजीकरण" (सरकारी कार्यों को निजी क्षेत्र में स्थानांतरित करना) आगे बढ़ने के लिए एक स्वीकार्य विकल्प बन गया है| अदालतों में मुकदमेबाजी के विस्फोट को न्यायपालिका में कुछ सिविल एवं फौजदारी मामलों में निजीकृत करने से रोका जा सकता है |
4. भारतीय अदालतों में मामलों की पेंडेंसी--संसद का मानसून सत्र हाल ही में (3 अक्टूबर,2020) को संपन्न हुआ | संसद की पिछली सभी बैठकों की तरह ही, सांसदों ने अपने सवालों के जवाब

देने के लिए अलग- अलग मंत्रालयों को प्रस्तुत किया | विधि एवं न्याय मंत्रालय, बेशक सांसदों से बहुत सारे प्रश्न करता है जिसपर उन्होंने अपनी लिखित प्रतिक्रिया प्रदान की है | उनमें से एक प्रश्न भारत में लंबित अदालती मामलों पर था | राष्ट्रीय न्यायिक डेटा ग्रिड (NJDG) द्वारा उपलब्ध कराए गईं आंकड़ों का निरीक्षण करने पर एक दिलचस्प तस्वीर उभरती दिखाई देती है |

राज्यसभा में एक प्रश्न के उत्तर में कानून मंत्री रवि शंकर प्रसाद ने कहा कि वर्ष 2020 तक भारत में प्रति मिलियन जनसंख्या पर न्यायाधीशों की संख्या 20.91 है | परिप्रेक्ष्य में, वर्ष 2018 में यह आंकड़ा 19.78 , वर्ष 2014 में 17.48 और वर्ष 2002 में 14.7 रहा | जबकि हम इस मोर्चे पर लगातार प्रगति देख रहे हैं, यह विचार करना उपयोगी होगा कि एक ही आंकड़ा संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए 107, कनाडा में 75 और ऑस्ट्रेलिया में 41 है |

भारत में प्रति मिलियन न्यायाधीशों की संख्या के आंकड़ों की गणना दो डेटा बिंदुओं--2011 की जनगणना की जनसंख्या आधार और सभी तीन स्तरों पर भारत में न्यायाधीशों की स्वीकृत शक्ति के आधार पर की जाती है | हमारे उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या1,079 है , जिला यह अधीनस्थ न्यायालयों की संख्या 24,203 हे और उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या 34 है |

लेकिन भारत में स्वीकृत पदों की संख्या और नियुक्त न्यायाधीशों की संख्या में काफी अंतर है | मंत्री रविशंकर प्रसाद ने कहा, "इंतियाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में , सुप्रीम कोर्ट ने भारत के विधि आयोग से कहा था कि मामलों के बैकलॉग को दूर करने के लिए आवश्यक अतिरिक्त अदालतों की संख्या के वैज्ञानिक मूल्यांकन के लिए एक विधि विकसित करें | विधि आयोग ने 245 वीं रिपोर्ट (2014) मैंने देखा कि प्रति व्यक्ति मामलों को दाखिल करना भौगोलिक इकाइयों में काफी भिन्न होता है क्योंकि यह जनसंख्या की सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों से जुड़ा होता है |

(a) The total number of cases pending in Hon'ble supreme court of India, High court and District & subordinate courts is given as under :-

1. Supreme Court	62,054 (as on 31.08.2020)
2. High Courts	51,57,378 (as on 20.09.2020)
3. District & subordinate courts	3,45,71,854 (as on 20.09.2020)

स्रोत : राज्यसभी वेबसाइट

वर्ष 2014 में, सुप्रीम कोर्ट ने राष्ट्रीय न्यायालय प्रबंधन प्रणाली समिति (NCMS समिति) को , इस संबंध में विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के माध्यम से , अपनी रिपोर्ट देने के लिए कहा था | समिति ने वर्ष 2016 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि सभी मामलों के निपटारे के लिए आवश्यक "न्यायिक घंटे" की कुल संख्या को पहले निर्धारित किया जाना चाहिए ताकि अधीनस्थ न्यायालयों की आवश्यक न्यायाधीश शक्ति का आंकलन किया जा सके |

न्याय विभाग ने कार्रवाई के लिए सभी राज्य सरकारों और उच्च न्यायालयों को समिति की अंतरिम रिपोर्ट भेजी थी, और अभी तक कुछ भी ठोस नहीं हुआ है | भारत ने केसों की पेंडेंसी का कोई विलक्षण राज्य नहीं है , जब हम भारत में लंबित अदालती मामलों की स्थिती की बात करते हैं तो विभिन्न राज्यों में अलग- अलग वास्तविकताएँ दिखाई देती है | देशभर की अदालतों का प्रदर्शन गुल के साथ साथ न्यायपालिका के स्तर पर भी काफी भिन्न है | भारत में सभी लंबित मामलों में से लगभग 87.5% हमारे निचली अदालतों से आते हैं, जो जिला और अधीनस्थ अदालतें है | ये अदालतें 1 साल के भीतर दायर किए गए आधे से अधिक नए मामलों (56%) का निपटान करती है, कागज ऊपर अच्छा दिखता है | हालांकि, ऐसा परिणाम ज्यादातर मुकदमा (21%) के बिना मामलों को खारिज करने के द्वारा प्राप्त किया जाता है, उन्हें किसी अन्य अदालत(10%) में स्थानांतरित किया जाता है यह बस अदालत(19%) के बाहर मामले को सुलझाया जाता है |

(b) The total number of cases disposed off by Hon'ble supreme court of India, High courts and District & subordinate courts is given as under:

Year	Hon'ble supreme court of India	High courts	Disctrict & Subordinate courts
2017	13,850	16,24,529	1,98,61,459
2018	43,363	16,31,826	1,91,57,818
2019	45,787	19,17,049	1,83,71,574

स्रोत : राज्यसभा वेबसाइट

संसद में मंत्री रविशंकर प्रसाद का यह जवाब स्पष्ट रूप से रुझानों को प्रदर्शित करता है, जहाँ तक भारत में न्यायपालिका द्वारा मामलों के निपटान का संबंध है, निचली अदालतों के पास पकड़ने के लिए बहुत कुछ है क्योंकि इस मुददे पर उनका प्रदर्शन साल-दर-साल खराब हो गया है |

सुप्रीम कोर्ट द्वारा वर्ष 2017 और वर्ष 2018 के बीच केस डिस्पोजल की संख्या में भारी उछाल प्रभावशाली और प्रशंसनीय हैं | हालांकि, मैं उन सभी परिवर्तनों और सुधारों के बारे में सुनिश्चित नहीं हूँ जिन्हें अदालत ने वर्ष-दर -वर्ष सुधार पर पूरा करने के लिए शामिल किया हो |

Details of Pending cases in the High Courts

SL. No.	Name of High Courts	Pending Cases (Civil)	Pending Cases (Ciminal)	Number of Cases Pending in High Courts as on 16.09.2020
1.	इलाहाबाद उच्च न्यायालय	399710	346967	746677
2.	बोम्बे उच्च न्यायालय	224685	55242	279927
3.	कलकत्ता उच्च न्यायालय	222935	40120	263055
4.	गोवाहाटी उच्च न्यायालय	40166	10011	50177
5.	तेलंगाना उच्च न्यायालय	198908	32852	231760
6.	आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय	172657	30467	203124
7.	छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय	45589	27984	73573
8.	दिल्ली उच्च न्यायालय	65419	25479	90898
9.	गुजरात उच्च न्यायालय	95018	47100	142118
10.	हिमांचल प्रदेश उच्च न्यायालय	61886	8941	70827
11.	केन्द्र प्रशासित जम्मू एवं कश्मीर लद्दाख उच्च न्यायालय	59510	7946	67456
12.	झारखण्ड उच्च न्यायालय	40136	44708	85024
13.	कर्नाटक उच्च न्यायालय	165645	32045	197690
14.	केरल उच्च न्यायालय	162495	44616	207111
15.	मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय	232187	143443	375630
16.	मणिपुर उच्च न्यायालय	3785	385	4170
17.	मेघालय उच्च न्यायालय	1320	102	1422
18.	पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय	362372	244697	607069
19.	राजस्थान उच्च न्यायालय	374582	133167	507749
20.	सिक्किम उच्च न्यायालय	194	46	240
21.	त्रिपुरा उच्च न्यायालय	1792	335	2127
22.	उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय	23379	14783	38162
23.	मद्रास उच्च न्यायालय	511362	58920	570282
24.	उड़ीसा उच्च न्यायालय	115338	51136	166474
25.	पटना उच्च न्यायालय	95839	74340	170179
	कुल	3677089	1475832	5152921

स्रोत :— लोकसभा वबसाइट

हमारे 25 उच्च न्यायालयों में लंबित मामले इसी तरह की दिलचस्प तस्वीर पेश करते हैं | वर्ष 2018 और इस वर्ष की पहली छमाही के बीच पूरे देश में उच्च न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या में लगभग 30% का भारी उछाल देखा गया है | जबकि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पास अधिकतम पेंडेंसी है | हालांकि, यह कुछ हद तक पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मामले में राष्ट्रव्यापी मामलों की समग्र पेंडेंसी के मामले में नंबर 2 पर आता है | पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने न्यायाधीशों की रिक्तियों के मामले में भारत में तीसरा स्थान प्राप्त किया है, जिसमें 85 की स्वीकृत शक्ति के खिलाफ़ केवल 56 न्यायाधीश हैं, जिससे मामलों का ढेर हो जाता है |

<u>भविष्य में प्राइवेट अदालतों की स्थापना करना—</u>

(A) <u>प्राइवेट अदालतों की स्थापना करने का लक्ष्य /उद्देश्य—</u>

- भारतीय अदालतों में लंबित मामलों के निपटान की व्यवस्था के लिए स्थापना करना |
- अपराध को कम करना और सार्वजनिक सुरक्षा को बढ़ाना |
- नागरिको के कानूनी अधिकारों, संपत्ति पर आपराधिक हमलों से रक्षा, उनकी स्वतंत्रता, अखंडता तथा न्यायपालिका पर उनकी विश्वसनीयता को बनाए रखना |

- प्रत्येक व्यक्ति को अदालती कार्रवाई में लगने वाले फिजूल समय से निजात दिलाना |
- शीघ्र, सस्ता एवं सुलभ न्याय उपलब्ध कराना |
- समाज के गरीब व कमजोर वर्ग तक न्याय की पहुँच उपलब्ध कराना |

(B) <u>प्राइवेट अदालतों की संरचना–</u>

प्राइवेट अदालतों की स्थापना, भविष्य की एक सकारात्मक परिकल्पना है, जिसे न्यायिक तंत्र के तीनों स्तंभों विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका तथा जनता के सहयोग एवं सहमति के द्वारा साकार रूप में स्थापित किया जा सकता है | यदि इन प्राइवेट अदालतों में कानूनी शिक्षा प्राप्त किए गए व्यक्तियों को ही सम्मिलित किया जाएगा तो यह वर्तमान में स्थापित सरकारी अदालतों की जैसे वास्तविक स्वरूप को ही प्राप्त कर पाएगी, जिसमें निम्न व्यक्ति शामिल होंगे–

1 सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारी अथवा

2 सेवानिवृत्त उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश तथा

3 प्रख्यात न्यायविद (Eminent Jurist) या अधिवक्ता जिसे कम से कम 15 वर्ष का वकालत का अनुभव प्राप्त हो |

प्राइवेट अदालतों का संचालन उपरोक्त वर्णित पीठासीन अधिकारी द्वारा किया जाएगा एवं उनमें कार्यरत कर्मचारी एवं स्टाफ सदस्य राजस्थान न्यायिक सेवा नियमों के अधीन कार्य करेंगे |

(C) <u>प्राइवेट अदालतों की अधिकारिता–</u>

इन अदालतों को सिविल प्रक्रिया संहिता में वर्णित सिविल सिविल न्यायालयों जैसी शक्तियां प्राप्त होंगी | प्रत्येक स्थानीय क्षेत्र एवं वॉर्ड /नगरपालिका /पंचायत समिति क्षेत्र के 20 किलोमीटर की अधिकारिता में एक प्राइवेट अदालत गठित होगी, जिससे स्थानीय क्षेत्र के ब्लॉक (Blocks) के आधार पर विभाजित किया जाएगा–

1 नॉर्थ ब्लॉक

2 साउथ ब्लॉक

3 ईस्ट ब्लॉक

4 वेस्ट ब्लॉक

5 नॉर्थ - ईस्ट ब्लॉक

6 नोर्थ- वेस्ट ब्लॉक

7 वेस्ट -साउथ ब्लॉक

8 ईस्ट -साउथ ब्लॉक

इसका परिणाम यह होगा कि प्रत्येक स्थानीय क्षेत्र की शिकायतों का निस्तारण उन्हीं के निकट स्थापित प्राइवेट अदालत में हो सकेगा और लोगों को कम समय में सस्ता न्याय उपलब्ध होगा |

(D) प्राइवेट अदालतों को किन मामलों की सुनवाई करने की शक्ति होगी–

इन अदालतों को सिविल मामलों एवं फौजदारी मामले जिनमें जुर्माना अधिरोपित किए जाने का प्रावधान है अथवा हे सिविल दोष / अपकृत्य सम्बंधित मामले या व्यक्तिगत अधिकारों के उल्लंघन से संबंधित मामलों की सुनवाई करने की शक्ति होगी | जैसे–

- अपकृत्य विधि संबंधी मामले
- संविदा विधि संबंधी मामले
- बिजली अधिनियम संबंधी मामले
- कॉर्पोरेट अधिनियम अथवा कंपनी विधि के मामले
- संपत्ति के बंटवारे संबंधी मामले
- औद्योगिक विवाद
- लेबर विवाद
- उपेक्षा से संबंधी मामले
- नगर निगम में सेटबैक से संबंधित मामले
- उपभोक्ता विवाद
- परिवहन संबंधी मामले
- चुनाव संबंधी विवाद
- मोटर यान अधिनियम संबंधित मामले

(E) प्राइवेट अदालतों में न्यायाधीशों की नियुक्ति--राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना जारी करके न्यायाधीशों की नियुक्ति करेगी , जिसपर राज्य के उच्च न्यायालय का नियंत्रण होगा |

(F) वित्त एवं प्रबंधन-- प्राइवेट अदालतों के गठन हेतु राज्य की राज्य सरकारे वित्त एवं प्रबंधन की व्यवस्थाएँ उपलब्ध कराएंगी, जो कि प्रत्यक्ष रूप से राज्य के उच्च न्यायालय के नियंत्रण एवं निरीक्षण में होगा |

(G) प्राइवेट कोर्स हेतु इनफ्रास्ट्रक्चर (आधारभूत संरचना) ---

भारत में प्रतिवर्ष आर्थिक बजट पारित किए जाने पर राज्य सरकारे, आर्थिक एवं बजटीय स् थिति को सदन में कमजोर व्यक्त करती है और संसाधनों की कमी का रोना रोती है | प्राइवेट अदालतों की भविष्य में परिकल्पना को यदि सरकार स्वरूप में तब्दील करना कहती है तो इसके लिए उसे पब्लिक- प्राइवेट पार्टनरशिप पर आधारित कार्य करना होगा, जिसमें प्राइवेट कॉलेज, विश्वविद्यालय, राजीवगांधी पाठशाला केन्द्र (जिन्हें कई राज्य सरकारों द्वारा बंद कर दिया गया है)

तथा स्थानीय क्षेत्र में स्थापित सामुदायिक केन्द्र की बिल्डिंग, फर्नीचर तथा स्टाफ का बेहतर सदुपयोग करना होगा, क्योंकि आज समय की यही मांग है कि न्यायपालिका की बेहतर अवसंरचना निर्माण हेतु अतिरिक्त संसाधनों का प्रयोग न करके जो हमारे पास उपलब्ध संसाधन हैं उन्ही का ही बेहतर एवं उचित उपयोग किया जा सके | जिसका परिणाम यह होगा कि एक आम व्यक्ति की सभी शिकायतें उसकी स्थानीय एवं निकटस्थ अधिकारिता में स्थापित प्राइवेट अदालतों द्वारा सुनी जा सकेंगी और समय पर उचित रूप से निपटाई जा सकेंगी | जिससे एक और फायदा आम व्यक्ति को होगा कि वह अपने छोटे छोटी मामलों के लिए सीधे ही सेशन न्यायालय एवं जिला एवं सत्र न्यायालय ये चक्कर काटने से मुक्त हो जाएगा |

निष्कर्ष और सुझाव

प्राइवेट अदालतें वे अदालतें हैं जो सरकार की अनुमति से पब्लिक - प्राइवेट पार्टनरशिप द्वारा चलाई जाती हैं और संविधान के तहत स्थापित अदालत को दी गई सभी शक्तियों के साथ निवेश की जाती हैं। प्राइवेट अदालतें काम करने में स्वाभाविक रूप से लचीली होती हैं और सरकारी अदालतों की तुलना में अधिक कुशल होने के लिए बाध्य होती हैं क्योंकि अनुभवजन्य साक्ष्य हैं कि प्राइवेट संगठन अधिक कुशलता से चलाए जाते हैं।

ऐसे कई क्षेत्र हैं जिनमें रेडियो, टीवी और दूरसंचार जैसे निजी संगठन की उपस्थिति अकल्पनीय थी। पहले किसी ने निजी टीवी चैनलों के बारे में नहीं सोचा था और सारा जोर किसी स्वायत्त संगठन के तहत रेडियो और टीवी चलाने पर था, लेकिन 1989 तक भी इस विचार को लागू नहीं किया गया था और जब प्रसार भारती का गठन हुआ था और यह कभी भी सरकारी नियंत्रण से मुक्त नहीं हो सका था। प्रौद्योगिकी ने भारत में निजी चैनलों को लाया सरकार ने निजी खिलाड़ियों को अपलिंकिंग को निर्देशित करने की अनुमति नहीं दी थी, इसलिए कोई टीवी चैनल लाइव कार्यक्रमों का प्रसारण नहीं कर सकता था। सरकार में प्राइवेट प्लेयर्स को इतनी शक्ति भी नहीं थी, लेकिन प्रौद्योगिकी ने सरकार को निजी चैनलों को अनुमति देने के लिए मजबूर किया। लाइव शो और जनसभाओं का प्रसारण किया गया | वर्ष 1995 तक दूरसंचार के साथ भी ऐसा ही हुआ था, यहां तक कि निजी टेलीफोन कंपनियों के बारे में भी किसी को पता नहीं था और उसके बाद प्राइवेट प्लेयर्स दूरसंचार कंपनियां चला रहे हैं और उनके कुशल संचालन के कारण निजी कंपनियों ने बीएसएनएल और एमटीएनएल को सरकारी कंपनियों को हरा दिया। पहले टेलीफोन कंपनियों का उपभोक्ता टेलीफोन कंपनियों की मांग करने वाला एक भिखारी था और अब उपभोक्ता कंपनियों द्वारा पीछा किया जा रहा है। यदि अदालतों का निजीकरण (privatization) किया जाता है तो वादी राजा होगा। वादी को उपभोक्ता और ग्राहक मानने का समय आ गया है और अदालतें दूरसंचार कंपनियों की तरह सेवा प्रदाता के रूप में अदालत में आने वाले राजा के न्याय के लिए भीख मांगने के लिए हाथ जोड़कर नहीं आएंगी। सरकार को वादी के साथ उपभोक्ता जैसा व्यवहार करते हुए सेवा प्रदाता की तरह काम करना चाहिए था। न्यायाधीशों को किसी भी अन्य सरकारी कर्मचारी की तरह सरकारी कार्य करने के लिए वेतन पर काम करने वाले सरकारी कर्मचारी का भुगतान किया जाता है। उन्हें दैवीय शक्ति प्रदान करना किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

सरकार द्वारा लाइसेंस दिए जाने के दौरान निजी अदालतों को सेबी और टीआरए की तरह पेशेवर तरीके से विनियमित करने की आवश्यकता होती है। अपील के तंत्र के नियमन के अलावा निजी अदालतों को चलाने वाले संगठन को कुछ प्रतिष्ठित क्रेडिट एजेंसी द्वारा वैधानिक प्राधिकरण से अलग किया जाना चाहिए। पारंपरिक न्यायिक अदालतों को दिए गए कुछ धन निजी अदालतों को दिए जा सकते हैं और साथ ही धन का अच्छी तरह से उपयोग किया जाएगा। क्या आप वहां मौजूद हैं। डिजिटल रूप

से चलने वाले और आभासी अदालतों को लागू करने वाले संगठन के साथ-साथ वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से मामले की सुनवाई और बहस के लिए व्यापक सुविधा केंद्र होने के साथ-साथ निजी अदालतों को चलाने के लिए लाइसेंस देने में प्राथमिकता दी जानी चाहिए। निजी अदालतों को लाइसेंस शर्तों के रूप में वकीलों को प्रशिक्षण देने की जिम्मेदारी दी जानी चाहिए ताकि डिजिटल रूप से मामलों को संभालने के लिए इसके सुविधा केंद्र में वकीलों के लिए अन्य संबंधित मामलों को स्कैन करने की सुविधा होनी चाहिए। कई स्थानों पर सुविधा केंद्र उपलब्ध होने से वादकारियों को दूर-दराज से मुकदमों में भाग लेने के लिए आने वाली परेशानी से बचाया जा सकेगा। सरकारी संस्था से इस तरह की सुविधा की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

एक बार जब अदालतें स्थापित हो जाती हैं तो वकीलों, न्यायाधीशों, शिक्षाविदों, शिक्षाविदों, राजनेताओं, नागरिक समाज के सदस्यों और समाज के अन्य सदस्यों को एक साथ मिलकर इस लाभकारी तंत्र को और मजबूत करने के लिए सुझाव देना चाहिए। जिन लोगों के दिल में समाज का हित है, उन्हें निजी अदालतों के पक्ष में राय बनाने के लिए आगे आना चाहिए ताकि निहित स्वार्थों को इस दमनकारी व्यवस्था पर एकाधिकार और इसके विपरीत पकड़ बनाने के प्रयासों में निराश किया जा सके।

लोगों ने दूरसंचार और टीवी चैनलों में देखा है कि प्राइवेट संगठनों ने इन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर सुधार किया है और प्राइवेट अदालतों के कामकाज में भी उम्मीद की जा सकती है।

प्राइवेट अदालतों की स्थापना से सरकार की नियुक्ति में संरक्षण, भाई-भतीजावाद और अंकल सिंड्रोम का दायरा कम होगा और सरकार द्वारा कम नियुक्ति से भ्रष्टाचार भी कम होगा। कुशल कामकाज के लिए सरकार को जितना संभव हो उतना कम कार्य करना चाहिए। न्यायपालिका कार्यपालिका से सत्ता हथियाने की कोशिश कर रही है, यह समय है कि न्यायपालिका के कुछ कार्य जैसे कि निम्नतम स्तर पर मामलों का निर्णय करना प्राइवेट संगठन को दिया जाए |

राष्ट्र के लिए अच्छा होगा यदि कोई सुविचारित नागरिक देश की सेवा के उद्देश्य से निजी अदालतों को चलाने के लिए गैर-लाभकारी संगठन बनाने के लिए आगे आए। अजीज प्रेम जी और श्रीधरन जैसे लोग त्रुटिहीन साख वाले ऐसे व्यक्तियों के नियंत्रण वाले संगठनों द्वारा संचालित प्राइवेट अदालतों में अधिक विश्वास को प्रेरित करेंगे, वर्तमान शासन के तहत चलने वाली अदालतों की तुलना में लोगों में अधिक विश्वास पैदा करेंगे।

यदि लाभ के उद्देश्य से चलने वाली कोई संस्था प्राइवेट अदालतों की स्थापना करती है तो यह बुरा नहीं होगा, बशर्ते वे उत्कृष्ट सेवाएं दें और नियामक प्राधिकरण द्वारा बनाए गए दिशानिर्देशों का सख्ती से पालन करें।

सेबी और ट्राई की तर्ज पर कुछ प्राधिकरणों का गठन प्राइवेट अदालतों के कामकाज की निगरानी और विनियमन के लिए किया जाना चाहिए, यदि वे ऐसी अदालतों के न्यायाधीशों को कठोर सजा देते हैं, यदि वे बाहरी विचार पर विकृत निर्णय देते हुए पाए जाते हैं, जो कि न्यायाधीशों के साथ लंबा आदेश होगा।

प्राइवेट अदालतों के न्यायाधीशों को न्यायालय की अवमानना का कोई संरक्षण नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि यह उन्हें बिना किसी छूट के बाहरी विचार पर निर्णय देने के लिए प्रोत्साहित करेगा।

प्राइवेट अदालतों की स्थापना न्यायिक कार्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी नवीनतम तकनीक की शुरूआत का अग्रदूत हो सकती है |

कई प्राइवेट लॉ कॉलेज एवं विश्वविद्यालय चल रहे हैं जिनकी प्रतिष्ठा सरकारी लॉ कॉलेज से अधिक है और उसी तरह यह उम्मीद की जा सकती है कि एक बार प्राइवेट अदालतें स्थापित हो जाने के बाद वे प्रतिष्ठा अर्जित करने के लिए उनके साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए वर्तमान सरकार के न्यायाधीशों को बनाएंगे और ऐसे स्वस्थ प्रतिस्पर्धा समाज के लिए अच्छी होगी।

प्राइवेट अदालतों की स्थापना से रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराने के साथ-साथ मुकदमों का त्वरित निस्तारण वकीलों के लिए लाभकारी होगा। साक्ष्य दर्ज करने की प्रक्रिया तेज होने के लिए बाध्य होगी क्योंकि कुछ स्थगन होंगे क्योंकि प्राइवेट अदालतों को साक्ष्य की सुविधा उपलब्ध होगी। उनके पास उपकरण के साथ गवाहों से संपर्क करने की विशेषज्ञता होगी, जो अदालत में आने की उनकी आवश्यकता को दूर करते हैं जो अक्सर स्थगन का कारण होता है। जजों के तबादले कम होंगे, जिससे केस, तेज गति से चलेंगे। जैसे-जैसे लोगों का अदालत में विश्वास बढ़ेगा और वे अपने अधिकार को लागू करने के लिए मामले दर्ज करने में सहज होंगे, जबकि वर्तमान परिस्थितियों में ऐसे लोग गलत कर्ता के साथ अनुचित समझौता करते हैं क्योंकि वे अब अदालत का दरवाजा खटखटाना व्यर्थ समझते हैं। उनके लिए न्याय पाने के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाना एक जंगली हंस का पीछा करने जैसा है। जितने अधिक लोग केस दर्ज करेंगे, वकील को उतना ही अधिक काम मिलेगा जो आगे और अधिक लोगों को केस दर्ज करने के लिए प्रोत्साहित करेगा। घर पर जबरन कब्जा करने जैसा गलत काम बंद हो जाएगा क्योंकि लोग अनुचित समझौता करने के बजाय अदालत का दरवाजा खटखटाना पसंद करेंगे। समाज में अशांति कम होगी और त्वरित न्याय मिलने से कानून के प्रति लोगों का सम्मान बढ़ेगा जिससे लोगों को कानून का पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा जिससे समाज का सर्वांगीण विकास हो सके।

कहावत भारत में मुकदमेबाजी के बारे में है और जो विश्व स्तर पर भी लागू हो सकती है- ... जो जीता सो हारा, जो हारा सो मारा....... जो मुकदमे में जीतता है वह वास्तव में पराजित होता है और जो मुकदमा हारता है वह वास्तव में समाप्त हो जाता है। भारत में किसी भी आंतरिक मुकदमेबाजी की यह खतरनाक प्रकृति है। इसके अलावा आलस, अक्षम और शून्य जवाबदेही न्यायिक कर्मियों से पीड़ित विकट न्यायिक तंत्र मुकदमेबाजी के दुख को बढ़ाता है। वादी को दमनकारी, शोषक और पीठ तोड़ने वाली न्यायिक मशीनरी से गुजरना पड़ता है जहाँ आसानी से सुलभ और सस्ते न्याय की अवधारणा वादी के लिए एक मृगतृष्णा के बजाय एक क्रूर मजाक है, इसलिए यह कहा जाता है कि न्यायिक अदालतों के साथ केवल दुर्भाग्यपूर्ण ही आमने सामने होता है। वादियों की पीड़ा को कम करने के लिए प्रौद्योगिकी की मदद लेने के लिए कुछ प्रयास किए गए है, लेकिन वे बहुत कम हैं और बहुत दूर हैं और उन्होंने उस मुख्य क्षेत्र को नहीं छुआ है जहां वादी पीड़ित हैं जो मुकदमेबाजी की महंगी

प्रकृति और मामलों को तय करने में लंबी देरी है। बादल में चांदी की परत है क्योंकि माननीय बोडो और चंद्रचूड़ जैसे कुछ न्यायिक अधिकारियों को यह कहते हुए सुना जाता है कि आभासी अदालतों की प्रणाली का विस्तार किया जाना चाहिए और मामलों को तय करने में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को पेश किया जाना चाहिए, लेकिन प्रक्रिया बहुत धीमी है। कोविड संकट भेष में एक आशीर्वाद के रूप में आया और कुछ स्तर पर प्रक्रिया शुरू की गई और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग सिस्टम के माध्यम से सुनवाई के साथ आभासी अदालतें(Virtual courts) शुरू की गईं, लेकिन फिर भी निहित स्वार्थ भौतिक सुनवाई प्रणाली में लौटने के लिए संघर्ष कर रहा है जो उपजाऊ आधार प्रदान करता है | कानूनी और आभासी अदालतों को लागू करने से कानूनी कार्य का भौगोलिक विकेंद्रीकरण होगा और उन वकीलों को अधिक कार्य प्रदान करेगा जो वर्तमान कानूनी प्रणाली से विकलांग हैं, जो उनकी अक्षमता के बावजूद केवल कुछ वकीलों का पक्षधर है। प्रौद्योगिकी की शुरूआत से वकीलों और वादियों के समय की बहुत बचत होगी क्योंकि एक वकील अपने कार्यालय से अधिक मामलों को संभालने में सक्षम होगा क्योंकि यह परिवहन में अपना समय बचाएगा, एक अदालत से दूसरी अदालत में जाने और अदालतों में अपनी बारी का इंतजार करने में मामले इससे उनकी ऊर्जा की भी बचत होगी जिसका उपयोग वह उन मामलों के अनुसंधान के लिए कर सकते हैं जो एक वकील के लिए कठिन हो गए हैं क्योंकि उनका अधिकांश समय अनुत्पादक कार्यों में व्यतीत होता है।

प्रौद्योगिकी की शुरूआत में समय लगेगा क्योंकि यह निहित स्वार्थ से कई बाधाओं और प्रतिरोध को दूर करने में है। तब तक हमें प्रोत्साहित करना होगा पूर्व मुकदमेबाजी को प्रोत्साहित करने के लिए मध्यस्थता की आवश्यकता है। हर स्तर पर विभिन्न अदालतों में लंबित मामलों का एक बड़ा बैकलॉग है, इसलिए प्रौद्योगिकी की शुरूआत के बाद भी, जो मामले के निपटारे में तेजी लाएगी, मुकदमेबाजी मध्यस्थता का महत्व समाप्त नहीं होगा क्योंकि मुकदमेबाजी मध्यस्थता अदालतों का बोझ उठा लेगी और वहां अदालतों में नए मामलों में भारी कमी होगी और पुराने लंबित मामलों को अधिक समय दिया जा सकता है, इसलिए प्रत्येक नागरिक को न्याय सुलभ बनाने के लिए चिंतित होने वाले किसी भी व्यक्ति को उसकी वित्तीय स्थिति के बावजूद, पूर्व-मुकदमे की दवा का महत्व नहीं खोया जा सकता है। व्यवस्था इतनी महंगी है कि न्याय की पहुंच आम आदमी से भी आगे निकल गई है।

इसलिए पूर्व-मुकदमेबाजी मध्यस्थता के लाभ संसाधनों के उचित उपयोग और सामाजिक तरीके से समाज के लिए लाभकारी परिणामों के संदर्भ में समाज पर दूरगामी प्रभाव के साथ बहुत अधिक हैं।

''बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ''

संदर्भ सूची (References)

किताबें (Books)

1. लेखक--बेनर्जी दुर्गा चरण

   किताब-लॉ एण्ड आर्बिट्रेशन इन इंडिया

   वर्ष–2001

   प्रकाशक-लिटिल प्रिंटर, लीडर्स प्रिंटिंग वर्क्स 1908

2. लेखक-डॉक्टर बीपी सर्राफ एंड जस्टिस एसएम झुंझुनूंवाला

   किताब-लॉ ऑफ आर्बिट्रेशन एंड एडीआर इन इंडिया

   वर्ष -1997

   प्रकाशक-विधि प्रकाशक

3. लेखक-पीके मजुमदार

   किताब-लॉ ऑफ आर्बिट्रेशन एंड कॉन्सिलिएशन

   वर्ष–1998

   प्रकाशक-ओरिएंट प्रकाशक कंपनी, 9th एडिशन

जर्नल्स–

1 आल इंडिया रिपोर्ट

2 आर्बिट्रेशन लॉ जर्नल

3 सुप्रीम कोर्ट केसेज

4 बॉम्बे केस रिपोर्टर

कानून

1. आर्बिट्रेशन एक्ट 1899
2. सिविल प्रक्रिया संहिता 1908
3. आर्बिट्रेशन एक्ट 1940
4. आर्बिट्रेशन एंड कॉन्सिलिएशन ऐक्ट 1996
   - लेख (Article)
   - इंटरनेट

- इ जनरल
- पत्रिका लेख
- समाचार पत्र
- पोर्टल
- कानूनी वेबसाइट्स
- प्रश्नावली
- आर्थिक मौद्रिक समीक्षा नीति
- राज्यसभा आधिकारिक वेबसाइट
- लोकसभा अधिकारिक वेबसाइट